भग़ति मंझि भग़वंतु, जीएं ग़ंधु फुलनि में,
कोड़िनि में को हिकिडो, समुझे संतु महंतु,
जो कलिपत कढी जीअ मों, सामी थियो ब़लवंतु,
जंहिंजो आदि न अंतु, सो ड़ेवु ड़िठाईं ड़ेहि में.

भक्ति और भगवान की एकरूपता का वर्णन करते हुए महाकवि सामीजी कहते हैं, ''जिस प्रकार फूलों में उनकी सुगंध समायी हुई रहती है, उसी प्रकार भगवान भक्ति में समाये हुए हैं। करोड़ों मनुष्यों में कोई एक ऐसा सत्पुरुष, संत-महंत होगा, जो यह तथ्य समझकर अपने अंदर से संशय, भ्रम आदि निकाल कर बलवान बन गया होगा। ऐसा सत्पुरुष ही भक्ति द्वारा अपनी देह में ही अनादि अनंत परमेश्वर के दर्शन करता है।''

शांडिल्य मुनि के 'भक्ति-सूत्र' के अनुसार 'परमेश्वर से परम अनुराग (प्रेम) करना भक्ति है।' - (सा परानुरक्तिरीश्वरे।) भगवान को भक्ति प्रिय है। परमेश्वर के दर्शन करने के लिए, प्रभु की प्राप्ति के लिए, आत्म-साक्षात्कार के लिए भक्ति आवश्यक मानी गयी है। परमेश्वर को मात्र फल, फूल, पत्र या पानी भी यदि भक्ति-भाव से अर्पण किया जायँ तो प्रभु प्रसन्न होते हैं। क्योंकि भगवान भक्ति में ही समाये हुए हैं। जगत में मात्र मनुष्य ही भक्ति करने का अधिकारी है। वह नौ प्रकार की भक्तियों में से किसी भी प्रकार की भक्ति द्वारा भगवान की अनन्य भक्ति कर अपना जीवन सफल कर सकता है। नारद मुनि कहते हैं कि अपने सभी कर्म भगवान को अर्पण करना और भगवान का स्मरण न करने से व्याकुल होना 'भक्ति' है। भागवत पुराण में कहा गया है कि भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करना मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। यह भक्ति निष्काम और नित्य होनी चाहिए। क्योंकि भक्ति में ही भगवान निवास करते हैं। जिस प्रकार फूलों की सुगंध फूलों में ही रहती है, अग्नि काष्ठ/लकड़ी में रहती है, बड़वाग्नि समुद्र के अंदर ही रहती है, उसी प्रकार भगवान भक्ति के अंदर ही स्थित हैं। अर्थात् यह रहस्य विरला कोई संत-महंत ही जान सकता है। वही अपने आत्मस्वरूप को पहचान कर परमेश्वर की भक्ति करता है और ज्ञानी बन जाता है। आत्मज्ञान द्वारा वह निर्मल हो कर परमेश्वर के दर्शन का अधिकारी बन जाता है। परमेश्वर की भक्ति मानो मोक्ष-प्राप्ति की सीढी है।

भक्ति नसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाम।
जिन-जिन मन आलस किया, जनम-जनम पछ्ताय।।

■